रीतिकाल की विभिन्न काव्य धाराएँ

① रीतिबद्ध ② रीतिमुक्त ③ रीतिसिद्ध

① रीतिबद्ध

हिन्दी में रीति का प्रयोग साधारणतया लक्षण ग्रन्थों के लिए होता है। जिन ग्रन्थों में काव्य के विभिन्न अङ्गों का लक्षण उदाहरण सहित विवेचन होता है उसे रीतिग्रन्थ कहा जाता है; और जिस वैज्ञानिक पद्धति पर जिस विधान के अनुसार यह विवेचन होता है उसे रीतिशास्त्र कहते हैं। जिस ग्रन्थ में रचना सम्बन्धी नियमों का विवेचन हो वह रीतिग्रन्थ है। जिस काव्य की रचना नियमों से आबद्ध हो वह रीतिकाव्य है। स्वभावतः इस प्रकार के काव्य में वस्तु की अपेक्षा 'रीति' अथवा आकार की, आत्मा के उत्कर्ष की अपेक्षा शरीर के अलंकरण की प्रधानता मिलती है।

रीतिकाल का अभिप्राय केवल सं. 1700 से 1900 तक के बीच लिखा समस्त काव्य नहीं बल्कि एक निश्चित लक्ष्य और प्रवृत्ति से लिखित काव्य है जिसके भीतर अलंकार, रस, ध्वनि, नायिका भेद, नख-शिख, गुण आदि के वर्णन से सम्बन्धित काव्य है।

संस्कृत काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों के आधार पर हिन्दी-साहित्य में लक्षण-ग्रन्थों के प्रणेता एवं लक्षण ग्रन्थ का आदर्श लेकर काव्य रचना करनेवालों की गणना रीतिबद्ध कवियों में की गई। केशव, चिन्तामणि, मतिराम, देव, भूषण, कुलपति मिश्र, मिखारीदास, रसलीन, बेनी प्रवीण, पद्माकर और ग्वाल आदि इसी श्रेणी के कवि हैं।

हिन्दी-साहित्य में संस्कृत के लक्षण ग्रन्थों की परम्परा को पुनर्जीवित करके पाण्डित्यपूर्ण रचनाओं का सर्जन करनेवाले आचार्य और कवि केशव के काव्य में तत्कालीन परम्पराओं का पूर्ण प्रतिबिम्ब है। ये संस्कृत के अलंकार सम्प्रदाय के अन्तर्गत भामह, दण्डी, उद्भट आदि चमत्कारिक अलंकार सिद्धान्त के प्रतिपादकों के शब्दों की प्रामाणिकता मानते हुए अपने काव्य के क्षेत्र में आगे बढ़े।

कवि और आचार्य दोनों रूपों में केशव का स्पष्ट दृष्टिकोण था जिसमें वे सफल हुए। 'रसिक प्रिया' में रसांगों, वृत्तियों और रस दोनों का वर्णन किया गया है, जिसका उदाहरण रसिकों की तृप्ति मात्र है —

अति रति गति मति एक करि, विविध विवेक विलास।
रसिकन को रसिक प्रिया, कीन्हीं केसवदास॥
केशव ने रसमग्न राधा और कृष्ण के रसानुभाव को ही प्रकाशित करने का मुख्य प्रयत्न किया है। इसमें रस की व्याख्या निम्नांकित शब्दों में की गई है—

मिली विभाव अनुभाव पुनि, संचारी सु अनूप।
व्यंग करै थिर भाव जो, सोई रस सुरवरूप॥

इसी श्रेणी के कवियों में मतिराम का विशेष महत्व है। इन्होंने अलंकारों के उदाहरणों में नायिका के नायकरूप सौन्दर्य का वर्णन भी किया है जो अत्यन्त ही उत्कृष्ट बन पड़ा है—

"कुन्दन को रंग फीको लगै, झलकै अति अंगनि चारु गोराई।
आँखिन में अलसानि चितौन में, मंजु विलासन की सरसाई॥
को बिनु मोल बिकात नहीं, मतिराम लहै मुसकानि मिठाई।
ज्यों-ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि, त्यों-त्यों खरी निकरै सी निकाई॥

मतिराम के काव्य में अलंकार और भाव का सुन्दर समन्वय है। उनमें व्यंग्यार्थ-चमत्कार अधिक है जिससे उनकी विलक्षणता का परिचय मिलता है। मैं यहाँ एक दोहा प्रस्तुत कर रहा हूँ जिसमें आलंकारिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति हुई है—

'हँसत बाल के बदन में, यों छवि कछू अतूल।
फूली चंपक बेलि ते, झरत चमेली फूल॥

रीतिबद्ध कवियों में भिखारीदास का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। अपने ग्रन्थों में इन्होंने ध्वनि, अलंकार, रस, नायिका-भेद, छन्द आदि के लक्षण और विवेचन किये हैं। नायिका-भेद के अन्तर्गत अज्ञात यौवना का एक चित्र देखा जा सकता है—

"कालि ही गूँथि बबा की सौं मैं, गजमोतिन की पहिरी अति आला।
आइ कहाँ ते इहाँ पुखराज की, संग गई जमुना तट बाला॥
न्हात उतारी हौं 'बेनी प्रबीन', हँसे सुनि बैनन नैन रसाला।
जानत ना अंग की बदली सबसों, बदली बदली कहै माला॥

इस प्रकार रीतिबद्ध कवियों की काव्य-साधना प्रशंसनीय है। रूप-सौन्दर्य को संतुलित शब्दों में उभार देना इन कवियों की विशेषता है।

(2) रीतिमुक्त कवि

'रीतिमुक्त' का सीधा अर्थ है – रीति के बन्धन से मुक्त। इस धारा के कवि मनोगत वेग के प्रवाह में काव्य की रचना करते थे। इसलिए इनकी रचनाओं में प्रेम के जिस रूप की स्वीकृति थी वह जीवनगत बन्धनों के त्याग का भी संकेत देनेवाला था।

रीतिमुक्त कवियों में घनानन्द, आलम, ठाकुर बोधा एवं द्विजदेव के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। रीतिमुक्त कवियों ने स्पष्ट घोषणा की कि प्रेम का मार्ग अत्यन्त सरल और सहज है। उसमें वक्रता का नामोनिशान नहीं है। चतुराई का लेश भी इसमें अत्यन्त घातक होगा –

" अति सूधो सनेह को मारग है,
जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
जहाँ सूधे चलैं तजि आपनपौ,
झिझकैं कपटी जे निसांक नहीं।"

रीतिबद्ध रचना में भी संयोग और वियोग की चरम दशा 'बिछुरनि मीन की औ मिलनि पतंग की' के द्वारा घोषित की जाती थी। प्रेम में मर मिटो, यही इनका मूलमंत्र था। विरह सहने का साहस उनकी शारीरिक सुकुमारता नहीं बटोर सकती। मन का बल उनके पास उतना नहीं होता, पर रीतिमुक्त कवि प्रेम में मर जाने को चेतनता का नहीं, जड़ता का लक्षण मानते हैं, चेतन तो साहसपूर्वक जीता है –

" हीन भएँ जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समानै।
नीर सनेही को लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै।
प्रीति की रीति सु क्यों समुझै जड़ मीत के पानि परें को प्रमानै।
या मन की जु दसा घनआनँद जीव की जीवनि जान ही जानै॥

प्राणों को जिलानेवाला प्रिय मन की दशा का अनुभव करनेवाला भी है, मीन का प्रिय उसके प्रेम का अनुभव करनेवाला नहीं है। मछली तुरन्त प्राण त्याग देती है, पर प्रेमी साहसपूर्वक वेदना सहता है। इसलिये इन दोनों में समता कैसी। यह बात और साफ करके यों कही गई है –

"मरिबो बिसराम गनै वह तौ यह बापुरी मीतजु त्यौं तरसै।
वह रूपछटा न सँभारि सकै यह तेज सबै चितवै बरसै।
घनआनँद कौन अनोखी दसा मति आवरी बावरी ह्वै थरसै।
बिछुरें मिलें मीन पतंग दसा कहा मो जिय की गति कों
परसै।

(3) रीतिसिद्ध कवि

रीतिसिद्ध उन कवियों को कहा गया है जिन्होंने लक्षण-ग्रन्थ तो नहीं लिखे, किन्तु जिन्होंने 'रीति' की परिपाटी का अपने काव्य में अनुसरण अवश्य किया है। इस वर्ग के कवियों में बिहारी सर्वश्रेष्ठ हैं।

रीतिसिद्ध कवि लक्षण-ग्रन्थ लिखनेवाले रीतिबद्ध कवियों की तरह रीति की शास्त्रकथित बातों का पूरा पालन नहीं करते थे। शास्त्र-स्थिति-सम्पादन मात्र इनका लक्ष्य नहीं था। कहीं तो चमत्कारातिशय के लिए ये उक्तियाँ बाँधते थे और कहीं रसा-भिव्यक्ति के लिए रीतिशास्त्रों में गिनाई हुई सामग्री का त्याग करके अपने अनुभव और निरीक्षण से प्राप्त उपलब्धि, सामग्री या नूतनता का सन्निवेश करते थे। किसी विशेष नायिका नायक के स्वरूप के लिए जो बातें शास्त्रों में कही हुई हैं वे उपलक्षण मात्र हैं अर्थात वे मार्ग-निर्देश के लिए हैं। उनके सहारे नयी कल्पनाएँ स्वयं कवि कर सकता है, और भी बातें वह ला सकता है। शास्त्र का निर्माण पहले से प्राप्त सामग्री से ही होता है। लक्ष्य देखकर लक्षण का निर्माण हुआ करता है, पर रीतिग्रन्थ लिखनेवाले कवि उन लक्षणों को ही सब कुछ मानते थे। परिणाम यह हुआ कि स्वतंत्र उद्भावना का मार्ग अवरुद्ध हो गया, भावों के हेरफेर से सबने अनेक उदाहरण एकत्र कर दिये। नई उद्भावना की ओर कम लोग प्रवृत्त हुए।

बिहारी में नवीन उद्भावना की शक्ति थी और भाव की भाषा पर भी उनका असाधारण अधिकार था। दोहे में वाणी के लिए मैदान कम होने से बहुत संक्षेप में काम चलाना पड़ता है। बिहारी के दोहों में जो कसावट है, अर्थात उनमें सांकेतिक अर्थों की अधिक संभावनाओं की जो कारीगरी की गई है उसका यह परिणाम है कि उसे खोलने के लिए लोगों को उस ओर पर कुंडलियाँ बाँधनी पड़ी। कसे हुए भावों, अर्थों विचारों को तू...कर फैलाना पड़ा था, उन्हें चुनकर वे फैला सके।

कम-से-कम शब्दों के माध्यम से अधिक-से-अधिक भावों को समेटने में बिहारी के सामने दूसरा कवि नहीं टिक सकता है। एक उदाहरण से बात स्पष्ट हो जायेगी —

"कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन में करत हैं, नैननु ही सब बात॥"

इतने अधिक भावों को एक दोहा में समेट देने की क्षमता बिहारी में ही है।